IMPACT FACTOR 7.50 (SJIAI)

BIHAR SHODH SAMAAGAM

Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed /Refereed Open Access Journal
Vol. 4, Issue 2, April-june, 2026
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/
DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.19795204

ISSN : 3048-6971

शरत्चंद्र के देवदास उपन्यास में स्त्री चेतना का स्वर

आयेशा बिश्वकर्मा
शोधार्थी
हिन्दी विभाग, कोच बिहार पंचानन बर्मा विश्वविद्यालय
पंचानन नगर, कोचबिहार, पिन-736101
पश्चिम बंगाल
Email-Id – ayeshabiswakarma198@gmail.com

भारतीय समाज एक बहुस्तरीय पितृसत्तात्मक समाज है, जहाँ स्त्रियों की स्थिति सदियों से जटिल रही है। तरह- तरह की रुढ़ियों में बाँधकर स्त्रियों पर शोषण किया जाता रहा है। स्त्रियों को उनके अधिकारों से वंचित रखकर, उनके अस्तित्व और स्वतंत्रता को हमेशा से दबाया जाता रहा है। समाज में स्त्रियों की भूमिका पहले से ही तय कर दी जाती है और जन्म लेते ही स्त्रियों को उस भूमिका के साँचे में ढालने का प्रयास किया जाता है। यहाँ 'सिमोन दा बोउआर' का यह कथन प्रासंगिक है कि "स्त्री पैदा नहीं होती बनाई जाती है।" [1] लेकिन समय के साथ धीरे-धीरे उनमें चेतना आनी शुरू हुई।

भारत में स्त्री चेतना की शुरुआत 19वीं सदी में मानी जाती है। समाज में स्त्रियों की स्थिति में सुधार करने के लिए कई समाज सुधारक सामने आये। जैसे-"राजा राम मोहन रॉय - जिन्होंने सती प्रथा के विरोध मे आंदोलन चलाया, ईश्वरचंद्र विद्यासागर- जिन्होंने विधवा विवाह और महिला शिक्षा को बढ़ावा दिया, ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई फुले- जिन्होंने लड़कियों के लिए पहला स्कूल खोला।"[2] इन सभी समाज सुधारकों ने सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों के विरोध में आंदोलन शुरू किया तथा स्त्रियों के अधिकारों, उनके अस्तित्व और स्वतंत्रता के प्रति समाज में जागरूकता लाने का प्रयास किया।

इसी तरह साहित्य के माध्यम से भी समाज में स्त्रियों के अधिकारों, उनके अस्तित्व, उनकी स्वतंत्रता के प्रति उनमें चेतना लाने का प्रयास किया जाने लगा। इस दिशा में कई लेखक सामने आये। जिनमें से बांग्ला के महान कथाशिल्पी शरत्चंद्र चट्टोपाध्याय ऐसे ही कथाकार थे जिन्होंने अपने उपन्यासों में स्त्रियों की आत्माभिव्यक्ति, उनके अधिकार, सम्मान, समाज में उनकी भागीदारी इत्यादि विषयों को उजागर किया है। 'देवदास' इसी श्रेणी का एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास में शरत्चंद्र ने स्त्रियों के बदलते स्वरूप, उनकी आंतरिक अभिव्यक्ति को प्रस्तुत किया है। उन्होंने उस दौर के बांग्ला समाज की स्त्रियों की स्थिति को सूक्ष्मता से समझाने और उनमें चेतना लाने का प्रयास किया है। इस उपन्यास में स्त्री चेतना विविध रूपों में अभिव्यक्त हुई हैं, जिसे आगे स्पष्ट रूप से दो प्रमुख स्त्री पात्र पार्वती और चंद्रमुखी के माध्यम से देखा जा सकता है। शरत्चंद्र ने इस उपन्यास में पार्वती के माध्यम से स्त्रियों के बचपन से लेकर तरुणावस्था तक की स्थिति को दर्शाया है। और यह भी दिखाया है कि समय के साथ उनमें किस तरह चेतना की अभिव्यक्ति होती है। बचपन में पार्वती बड़ी चंचल स्वभाव की होती है। वह दिन भर मित्र देवदास के साथ आवारों की तरह घूमती और बिना कसूर के ही मित्र के हाथों से मार भी खाती थी। वह देवदास से मार खाकर भी उसको मार खाने से बचाती थी-" रोते- रोते पार्वती घर लौट आई। उसके गाल के ऊपर, छड़ी का नीले रंग का दाग उभर आया था। पहले ही दादी की नजर उस पर पड़ी। वह चिल्ला पड़ी- अरे बाप- रे- बाप किसने इस तरह मारा पारू। आँख मलते हुए पार्वती ने कहा पंडित जी ने।" [3]

शरत्चंद्र ने अपने उपन्यासों में स्त्री को दया का पात्र के रूप में प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि उसे प्रतिरोध का प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है। तभी जो पार्वती देवदास के सामने डरी-सहमी रहती थी, वो आगे चलकर निडरता से अपनी बात रखती है और उसके गलतियों पर प्रतिरोध भी प्रकट करती है-"पहले पार्वती सहम गई, किंतु दूसरे ही क्षण अपने को सम्हालकर, शांत - गंभीर स्वर में उसने जवाब दिया-नहीं भूलूँगी कैसे ? बचपन से ही तुम्हें देखती आ रही हूँ। जब से होश संभाला, तभी से तुमसे डरती आ रही हूँ - तुम क्या इसी से मुझे धमकी दे रहे हो? किंत मुझे भी क्या तुम नहीं पहचानते ? कहकर वह निडरता से दोनों आँखें तरेरकर देखती हुई खड़ी रही।"[4]

पार्वती के चरित्र में स्त्री चेतना का स्वर प्रत्यक्ष और संघर्षशील रूप में दिखाई देता है। वह एक स्वाभिमानी स्त्री थी। वह किसी के आगे झुकना पसंद नहीं करती थी। उसके लिए उसकी इज्जत, सम्मान, उसके जीवन से अधिक प्रिय थे - "पार्वती हमेशा से स्वाभिमानी थी.. सहानुभूति वह सहन नहीं कर सकती और तिरस्कार, लाँछना- उसके लिए तो इसकी अपेक्षा मौत कहीं बेहतर थी।"[5] पार्वती के व्यक्तित्व में आत्मनिर्णय की भावना भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। वह अपने जीवन के महत्वपूर्ण निर्णय स्वयं लेती है। वह अपनी आंतरिक भावना को दबाए रखने की बजाय उसे अभिव्यक्त करना ही अधिक उपयुक्त समझती है । इसलिए जब पार्वती के घर में उसकी विवाह की चर्चा होती है तब पार्वती देवदास से मिलकर अपने मन की प्रेमभावना जो देवदास के प्रति उसके मन में थी उसे अभिव्यक्त करने आधी रात को देवदास के घर जाती है। भारतीय समाज में स्त्रियों पर कई तरह की पाबंदियाँ लगी होती है -जैसे शाम के समय स्त्रियों को घर से अकेले निकालने पर पाबंदी लगा दी जाती है। स्त्रियों की स्वतंत्रता, उनकी इच्छाएँ, उनके दायरे यह सब सदियों से समाज ही तय करती आई है। ऐसी

रूढ विचारधारा वाले समाज में रहकर भी पार्वती आधी रात को देवदास के घर जाने का साहस रखती है-"इतनी रात को छि: छि:। कल तुम मुंह कैसे दिखलाओगी ? सिर झुकाए ही पार्वती ने कहा -मुझमें इतना साहस है।"[6] यह उस समय के समाज में स्त्री के लिए एक साहसिक कदम था।

हमारे समाज ने स्त्री और पुरुष के मध्य एक असमान भेद-भाव वाली विचारधारा स्थापित किया है। इस रूढ़िवादी दोहरी विचारधारा को पार्वती बहुत अच्छी तरह समझती थी-"तुम पुरुष हो आज नहीं तो कल तुम्हारे कलंक की बात सभी भूल जाएंगे।"[7] साथ ही पार्वती की चेतना सामाजिक बंधनों का प्रतिकार करती हुई भी दिखाई देती है-"अगर मेरी निंदा इसलिए की जाए कि तुम्हारे पास मैं छिपकर आई थी तो ऐसी निंदा का मुझपर कुछ असर नहीं पड़ेगा।"[8]

स्त्री जब प्रेम करती है तो वह निश्छल भाव से करती है। फिर चाहे उसे कितनी भी तकलीफें झेलनी क्यों न पड़े ? वह उसके लिए भी तैयार रहती है, लेकिन उसकी इस त्याग, समर्पण को उसकी मजबूरी समझकर उसे जब दबाया जाता है या तिरस्कार किया जाता है तब यही त्याग भाव प्रतिरोध में बदलते वक्त नहीं लगता। यही भाव हमें पार्वती के अंदर भी दिखाई पड़ती है। जब देवदास पार्वती के प्रेम भावना का तिरस्कार यह कहकर करता है कि –"तुम नीच घर की हो। बेटी बेचने-खरीदने वाले घर की लड़की को माँ किसी तरह भी घर नहीं लाएगी।"[9] तब बात पार्वती के आत्मसम्मान पर आती है। जब बात उसकी स्वाभिमान पर आती है तब पार्वती अपने प्रेम को त्यागने का साहस भी रखती है। तभी जब तिरस्कार करने के पश्चात् देवदास पार्वती के पास वापस आकर कहता है- "मुझे माफ कर दो पारु ! तब मैं इतना नहीं समझता था। ….. जैसे भी हो सकेगा, मैं माँ-बाप को राजी करूंगा।" [10] तब पार्वती कहती है –"तुम्हारे माँ-बाप है, तो क्या मेरे नहीं है ? , उसकी इच्छा-अनिच्छा का कोई सवाल नहीं है ? …… तुम बड़े आदमी हो, किन्तु मेरे भी पिता भिखमंगे नहीं है।"[11] यहाँ शरत्चंद्र ने स्त्री के आत्मनिर्भर चेतना को दर्शाया है।

पार्वती बाह्य परिस्थितियों को चुनौती देकर अपनी पहचान को स्थापित करती है। अपने प्रेम से तिरस्कार पाने के पश्चात् वह टूटती नहीं बल्कि आगे बढ़ती है। वह विवाह करती है और अपने नए घर और परिवार के प्रति पूरी निष्ठा निभाती है। पार्वती अपने कर्तव्य को समझती है और उनका पालन भी करती है। यहाँ हमें पार्वती के अंदर कर्तव्यबोध की भावना दृष्टिगोचर होती है। पार्वती सिर्फ विद्रोह नहीं करती बल्कि वह जीवन में संतुलन स्थापित करना भी जानती है।

पार्वती की शादी 40 वर्ष के धनवान पुरुष से होती है। पार्वती यह जानती थी कि इस विवाह का उद्देश्य भुवन चौधरी का पार्वती के प्रति प्रेम या आकर्षण नहीं बल्कि घर में एक स्त्री और एक माँ की कमी को पूरा करना था -"कैसी उसकी जिद्द है .. किसी तरह भी विवाह नहीं किया, इसलिए तो बुढ़ापे में .. सारा घर साँय-साँय करने लगा लक्ष्मीहीन की तरह सब धुंधला हो गया, एक चिराग भी किसी तरह दिखाई नहीं देता इसलिए तो।" [12] विवाह में पार्वती को गहनों के साथ तीन बच्चों की माँ की उपाधि भी उपहार में मिलती है। नव विवाहिता पार्वती को घर आते ही घर की मालकिन बनने की जिम्मेदारी उठानी पड़ती है। ऐसी स्थिति में पार्वती बड़े धैर्य से अपने आप को सम्हालती है क्योंकि परिस्थितियों ने उसे को समय से पहले ही परिपक्व बना दिया था "तब पार्वती को अच्छी तरह से जानने वाले समझ जाते कि पार्वती के जीवन में आए हुए भिन्न- भिन्न परिवर्तनों के कारण अपनी उम्र की अपेक्षा वह कहीं अधिक परिपक्व हो गई थी।"[13] यह सिर्फ पार्वती की ही नहीं बल्कि भारतीय समाज के प्राय: स्त्रियों की स्थिति है। स्त्रियों को बचपन से ही परिपक्वता के ढाँचे में ढालने का प्रयास किया जाता है।

गृहप्रवेश करते ही जब पार्वती को पता चलता है कि उसकी सौतेली बड़ी बेटी उससे नाराज है तब वह बेझिझक उसको स्वयं घर लाकर मनाने की इच्छा प्रकट करती है –"हानि क्या है बेटा ? लज्जा की तो इसमें कोई बात नहीं। अगर मेरे जाने से यशोदा आ जाए -उसका क्रोध शांत हो जाए तो मेरा जाना कोई मुश्किल नहीं।"[14] पार्वती परिवार को जोड़ने में विश्वास रखती थी। वह घर की मालकिन थी लेकिन उसमें इस बात की लेश मात्र भी अहंम नहीं थी। पार्वती के लिए साज सज्जा, आभूषण से बढ़कर रिश्ते मायने रखते थे तभी –"पार्वती जब अपने सारे आभूषण एक-एक करके यशोदा के अंग-अंग में पहनाने लगी …….अंग प्रत्यंग में गहने पहनाकर आभूषणहीन पार्वती ने कहा -बेटी माँ से नाराज थी?"[15] तत्पश्चात् पार्वती को (यानि सौतेली माँ को) लेकर यशोदा के मन में जो नाकारात्मक पूर्व धारणा थी वह बदलने लगती है –अच्छा भैया, सौतेली माँ क्या इतना आदर-सत्कार कर सकती है।"[16] शरत्चंद्र ने यहाँ सौतेली माँ और सौतेली बेटी के बीच के स्नेह को दिखाया गया है। सौतेली माँ की जो नाकारात्मक छवि हमारे समाज में बनी हुई थी उसके विपरीत एक सकारात्मक छवि पार्वती के माध्यम से उन्होंने स्थापित करने का प्रयास किया है।

विवाह के पाश्चात्य पार्वती के अंतर्मन में प्रेम और कर्तव्य के माध्यम एक आंतरिक संघर्ष चलता है। वह देवदास को भूल नहीं पाती, लेकिन वह अपनी इस अंतर्द्वंद्व को कभी बाहर झलकने नहीं देती। और अपने दायित्वों पर उसे कभी बाधा बनने भी नहीं देती। शरत्चंद्र ने पार्वती के माध्यम से स्त्रियों की मानसिक दृढ़ता को दर्शाने का प्रयास किया है। इसी उपन्यास में दूसरी महत्वपूर्ण स्त्री पात्र चंद्रमुखी है। वह समाज **के** उपेक्षित स्त्री वर्ग की प्रतिनिधि चरित्र के रूप में दिखाई गई है। प्रस्तुत उपन्यास में चंद्रमुखी का चरित्र भी एक स्त्री चेतना की एक अलग आयाम के रूप में प्रस्तुत होती है।

चंद्रमुख कलकत्ता शहर में रहने वाली एक वेश्या स्त्री (नर्तकी) पात्र के रूप में दिखाई गई है। देवदास से मिलने के पूर्व उसके जीवन का कोई उद्देश्य नहीं होता, उसकी जीवन उस पेशे तक ही सीमित थी। देवदास के संपर्क में आने के पश्चात् वह धीरे- धीरे अपने आप में बदलाव लाने की सोचती है। समाज में वेश्याओं का जीवन इतना कष्टदायक, लांछनिय है कि कोई स्त्री एक बार इस पेशे में फंस जाने के पश्चात् समाज में सामान्य जीवन जीने के बारे में कल्पना भी नहीं कर सकती है। उन्हें प्रत्येक दिन कितनी लांछना-कितना अपमान झेलकर भी चुप रहना पड़ता है-"इसके अलावा न जाने कितनी लांछना, फटकार और अपमान सह लेने की इन्हें आदत पड़ जाती है; इसलिए वह चुपचाप चौखट पकड़े खड़ी रही।"[17]

चंद्रमुखी भी ऐसी ही परिवेश की आदी थी। लेकिन देवदास का उसके प्रति नफरत भरी व्यवहार ने उसे अपने व्यक्तित्व के प्रति सोचने में मजबूर कर दिया। धीरे-धीरे चंद्रमुखी में आत्मचेतना जागने लगीं। अब स्वंय के व्यक्तित्व में सुधार की इच्छा उसमें जागने लगी- "एक दिन तुमने कहा हम सब कितना बर्दाश्त करती है। लांछना, अपमान, बुरा से बुरा अत्याचार और उपद्रव की उसी दिन से मुझे बहुत अभिमान हो गया, मैंने सब कुछ बंद कर दिया।"[18] शरत्चंद्र ने प्रस्तुत उपन्यास में चंद्रमुखी के माध्यम से समाज में उपेक्षित स्त्री के आंतरिक मन की मानवीय, आत्मबल और उनमें परिवर्तन की क्षमता को उजागर करने का प्रयास किया है। चंद्रमुखी एक वेश्या नर्तकी होते हुए भी मानवीय, संवेदनशीलता उसमे थी। उसके अंदर स्वाभिमानी चेतना भी दिखाई पड़ती है। जब देवदास पहली बार चंद्रमुखी से मिला था तब वह चंद्रमुखी से घृणा करता था। वह चंद्रमुखी जैसी स्त्री को समाज में पतिता समझता था। सिर्फ पेशे के आधार पर वह चंद्रमुखी के व्यक्तित्व का आंकलन करता है और उसकी अवहेलना करते हुए कहता है- "चंद्रमुखी, तुम तो जानती नहीं हो – केवल मैं जानता हूँ कि मैं, तुमसे कितनी नफरत करता हूँ।"[19] और आगे करता है- "अहा , तुम सहिष्णुता की मूर्ति हो ! लांछना, फटकार, अपमान, अत्याचार और उपद्रव इत्यादि स्त्री जाति कितना बर्दाश्त कर पाती है - तुम्हीं इसके लिए उदाहरण हो।"[2]यह सिर्फ देवदास की सोच नहीं बल्कि हमारे समाज के प्रायः सभी पुरुषों की सोच है। शरत्चंद्र ने चंद्रमुखी के माध्यम से दिखाया है कि उपेक्षित लांछित स्त्री भी अगर चाहें तो समाज में सामान्य जीवन जीने की ओर कदम बढ़ा सकती है- "नहीं। उस दिन ये क्या, तुम्हारे जाने के बाद से ही यहाँ कोई नहीं आया।"[21]शरत्चंद्र ने चंद्रमुखी के माध्यम से समाज की उपेक्षित स्त्रियों में आत्मचेतना और सुधार की चेतना को जगाने का प्रयास किया है। उन्होंने दिखाया है कि चंद्रमुखी जैसी स्त्रियों को भी प्रेम करने का अधिकार है और वे भी प्रेम के लिए अपने सुख का त्याग कर सकती है - "पहले की मैं (अहम् इतनी बदल गई कि अबकी 'मैं', वह नहीं रही।"[22] चंद्रमुखी देवदास से निस्वार्थ प्रेम करती है। किन्तु वह अपने प्रेम को थोपती नहीं। "तुम कितनी ही बातें कह डालते हो, मारे नफरत के दुत्कार देते हो, किंतु मैं तब भी तुम्हारे पास आना चाहती हूँ।"[23] यहाँ देवदास के प्रति चंद्रमुखी की आंतरिक संवदेनशीलता दिखाई देती है।

चंद्रमुखी अब उस पेशे को छोड़कर एक सरल जीवन जीने की ओर कदम बढ़ाती है। इस दिशा में वह धार्मिक आडंबर का रास्ता नहीं अपनाती बल्कि मानवीय सेवा के रास्ते को अपनाकर वह एक छोटे से गाँव अशथझूरी में जाकर बसती है तभी जब देवदास पूछता है "किन्तु जाओगी कहाँ ? किसी तीर्थ-स्थान में"?[24] तब चंद्रमुखी कहती है –"नहीं देवदास ! धर्म और तीर्थ में मुझे उतना विश्वास नहीं। कलकत्ते से अधिक दूर नहीं जाऊँगी। करीब ही किसी गाँव में जाकर रहूँगी।"[25] चंद्रमुखी पढ़ी-लिखी न होने पर भी व्यवहारिक ज्ञान की चेतना उसमें थी। वह धार्मिक आडंबरों का प्रतिकार करती है। और मानवीय धर्म को महत्व देती है। उसके अंदर कितनी आत्मचेतना थी। वह स्त्रियों के अंतर्भाव को बारीकी से समझती थी कि समाज के तथाकथिक नैतिक मर्यादा की बेड़ियाँ किस तरह से उनके भावों को दबाती आ रही है। उस दौर में एक पढ़ी-लिखी स्त्री भी शायद स्त्रियों की आंतरिक पीड़ा को इतना न समझ पाती, जितनी चंद्रमुखी समझती है। उपन्यासकार ने चंद्रमुखी के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास किया है कि सिर्फ पेशे से किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण नहीं होता। तभी वेश्या होकर भी चंद्रमुखी की चेतना काफी अलग थी। जब देवदास कहता है –"स्त्रियों का मन बहुत चंचल होता है -बहुत अविश्वासी।"[26] तब चंद्रमुखी उसे समझाती है-"स्त्री जाति को चंचल अस्थिर चित्तवाली कहकर जितना बदनाम किया गया है। वास्तव में इतनी बदनामी के लायक वे हैं नहीं। बदनाम भी तुम्हीं करते हो और इज्जत भी तुम्हीं करते हो। तुम लोगों को जो कुछ होता है अनायास ही कह देते हो, किन्तु वे तो ऐसा कर नहीं सकती। अपने मन की बातें प्रकट नहीं कर सकती और प्रकट करने पर भी सभी नहीं समझते क्योंकि वे इतना स्पष्ट नहीं होती-तुम लोगों के मुंह के सामने दब जाती है।"[27]

स्त्रियों के समर्पण को कभी सराहना नहीं मिलती। कितना भी वह अपनी गृहस्थी के लिए कर ले, उसे कभी सराहना नहीं मिलती। चंद्रमुखी इन सभी विषयों पर अपनी बात रखती है –"वे शांति और धैर्य से गृहस्थी का काम करती है, दुःख के समय जी-जान से सहायता करती है-लेकिन तुम कितनी प्रशंसा करते हो ? मुँह से कितना धन्यवाद देते हो।"[28] और आगे वह उस पक्ष को केंद्रित करती है जो हमारे समाज में आज भी प्रासंगिक है-"इसके बाद यदि किसी अशुभ घड़ी में, उसकी छाती के अंदर की कोई असहनीय वेदना छटपटाकर बाहर निकाल आती है .. .. तब तुम चिल्लाकर कह उठते हो-कलंकिनी ! छि : छि :! "[29] यहाँ उपन्यासकार ने चंद्रमुखी के माध्यम से समाज के पुरुषों के विचार को दर्शाया है कि वह समाज में स्त्री की भूमिका को कितना सराहना देते हैं। चंद्रमुखी बाहरी रूप से रूढ़ियों का या अत्याचारों का विरोध नहीं करती बल्कि आंतरिक रूप से वह इस सब का प्रतिकार करती है। वह अपनी स्वतंत्रता की डोर को किसी दूसरे के हाथों में नहीं सौंपना चाहती। वह कहती है –"स्वाधीनता से स्वच्छ रहूँगी। तकलीफ करने क्यों जाऊँ ? शारीरिक कष्ट कभी बर्दाश्त नहीं किया, अब भी नहीं कर सकूँगी।"[30] चंद्रमुखी जब अपने जीवन में परिवर्तन की दिशा में बढ़ती है तब वह सारी उन चीजों का त्याग करने लगती है, जो उसके जीवन की सबसे बड़ी पगबाधा थी –"परंतु मैं अब लालच में नहीं पड़ूँगी। ---मानती हूँ कि औरतों को ज्यादा लालच होता है किन्तु लालच की जो चीजें है, उन्हें जब अपनी इच्छा से ही छोड़ दिया तब मुझे और कोई भय नहीं।"[31]

चंद्रमुखी समाज द्वारा तिरस्कृत होने के बावजूद भी वह टूटती या बिखरती नहीं है बल्कि अपने स्वाभिमान को बनाए रखती है। वह वेश्या के अस्तित्व से हटकर एक अलग अस्तित्व की तलाश में निकलती है। वह अपने जीवन को उस दलदल से बाहर निकालकर एक स्वतंत्र जीवन जीने की ओर कदम बढ़ाती है। हमारे समाज में आज भी चंद्रमुखी जैसी कई स्त्रियाँ है जो इस तरह के दलदल में फंसी हुई है जो इसी समाज में रहकर भी इस समाज का हिस्सा नहीं है।चाहकर भी मनुष्य की श्रेणी आने की हिम्मत नहीं जूटा पाती। एक सामान्य जीवन जीने की कल्पना नहीं कर पाती। ऐसी स्त्रियों के लिए चंद्रमुखी का चरित्र एक प्रेरणादायक बनकर सामने आता है। उसके माध्यम से उपन्यासकार ने स्त्री चेतना की एक मजबूत रूप दर्शाया है।

आलोच्च उपन्यास में हमें देवदास की माता में भी कुछ-कुछ स्त्री चेतना के बीज रूप दिखाई पड़ती है। वह एक संस्कारी घरेलू स्त्री की भूमिका के रूप में दिखाई देती है। उनके पति के रहते वह घर की मालकिन की तरह रहती थी लेकिन पति के मृत्यु के पश्चात् वह पद अब उनसे छिन गया। और जब उन्हें अपने ही घर

में एक आश्रित अनाथ नारी की तरह जीवन बिताना पड़ता है तब वह कहती है –"इस घर में गुलाम की तरह रहना वह सहन नहीं कर पाती थी-आज कई दिनों से वह काशीवास करने का निश्चय कर रही थी।"[32] वह अपने पुत्र देवदास से कहती है –"------उनकी वर्षी हो जाने पर तुम्हारी शादी करके गृहस्थ बनाकर ही काशीवास करूंगी।"[33] उपन्यासकार ने दिखाया है कि हमारा समाज केवल पुरुष के साथ ही स्त्री के अस्तित्व को देखता है, पुरुष का साया स्त्री से उठते ही उसे अपने ही घर में अनाथ जैसा महसूस कराया जाता है। यही स्थिति से बचने के लिए देवदास की माँ काशीवास की सोचती है।

इस प्रकार उल्लेखित उपन्यास में स्त्री चेतना का स्वरूप अत्यंत व्यापक, संवेदनशील और बहुआयामी रूप में दिखाई पड़ता है। उपन्यास का दो प्रमुख स्त्री पात्र पार्वती और चंद्रमुखी यद्यपि दोनों एक ही सामाजिक परिवेश से जुड़ी है। तथापि उनकी चेतना और संघर्ष के तरीके भिन्न है। दोनों ही समाज की रूढ़ियों और बंधनों का प्रतिकार करती है तथा अपनी पहचान बनाने का प्रयास करती है लेकिन दोनों के रास्ते भिन्न हैं । पार्वती प्रत्यक्ष रूप से प्रतिकार करती है और चंद्रमुखी अप्रत्यक्ष रूप से।

पार्वती में जहाँ हमें आत्मसम्मान, कर्तव्य और सामाजिक मर्यादा का संतुलित रूप दिखाई देता है, वहीं चंद्रमुखी में आत्मपरिवर्तन, करुणा और नि:स्वार्थ प्रेम, का उदात्त रूप मिलता है। उपन्यासकार ने यह स्पष्ट रूप से दिखाया है कि स्त्री सिर्फ परिस्थितियों का शिकार मात्र नहीं होती, बल्कि उन परिस्थितियों से निकलकर अपनी अलग पहचान बना सकती है। वह अपने निर्णय और मूल्यों के आधार पर जीवन को एक सशक्त दिशा की ओर स्थापित कर सकती है।

अत: यह कहा जा सकता है कि यह उपन्यास स्त्री के अंतर्मन की गहराइयों उसकी संघर्षशीलता और उसकी स्वतंत्र पहचान को उजागर करता है। जो आज भी समाज के लिए प्रासंगिक और प्रेरणादायक बिषय है।

संदर्भ-सूची

1. eGyanKosh-https://egyankosh.ac.in स्त्री विमर्श : वैचारिक दृष्टिकोण, पृष्ठ -46
2. वही, पृष्ठ -12
3. चट्टोपाध्याय, शरत्चंद्र, देवदास, ज्योति पब्लिकेशन, दिल्ली, संस्करण 2022, पृष्ठ – 16
4. वही, पृष्ठ -49
5. वही, पृष्ठ -32
6. वही, पृष्ठ -39
7. वही, पृष्ठ -39
8. वही, पृष्ठ-39
9. वही, पृष्ठ-42
10. वही, पृष्ठ-49
11. वही,पृष्ठ -49
12. वही, पृष्ठ -66
13. वही, पृष्ठ -64
14. वही,पृष्ठ -67
15. वही, पृष्ठ –(67-68)
16. वही, पृष्ठ -68
17. वही, पृष्ठ -60
18. वही, पृष्ठ -89
19. वही, पृष्ठ -72
20. वही, पृष्ठ -72
21. वही, पृष्ठ -87
22. वही, पृष्ठ -88
23. वही, पृष्ठ -89
24. वही, पृष्ठ -89
25. वही, पृष्ठ -89
26. वही, पृष्ठ -90
27. वही, पृष्ठ -91
28. वही, पृष्ठ -92
29. वही, पृष्ठ -92
30. वही, पृष्ठ -90
31. वही, पृष्ठ -90
32. वही, पृष्ठ -84
33. वही, पृष्ठ -84